20वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य का सिनेमाई रूपान्तरण : वर्ग, संप्रदाय एवं जेंडर के सवाल

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ से हिंदी साहित्य विषय में
पीएच०डी० की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध-संक्षिप्तिका

BABASAHEB BHIMRAO AMBEDKAR UNIVERSITY
LUCKNOW
प्रज्ञा शील करूणा
ESTABLISHED 1996

शोध निर्देशिका
डॉ० प्रीति राय
सहायक आचार्या
हिंदी विभाग

शोध छात्रा
कु० सरिता यादव
ना. सं.: 624/18
हिंदी विभाग

हिंदी विभाग
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ-226025(उ०प्र०)

2022

शोध–संक्षिप्तिका

भूमिका –

हिंदी गद्य साहित्य का विकास आधुनिक युग की देन है। इसके अंतर्गत कथात्मक साहित्य अत्यंत लोकप्रिय विधा है। कहानी और उपन्यास से संबंधित साहित्य को सम्मिलित रूप में कथा साहित्य कहा जाता है। ये दोनों गद्य की दो महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधाएँ हैं और इनका विकास आधुनिक काल में हुआ है। कथा–साहित्य की ही भांति सिनेमा भी आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। श्रव्य–दृश्य होने के कारण सिनेमा ने साहित्य की अपेक्षा अधिक लोकप्रियता प्राप्त की। एक अच्छी साहित्यिक कृति चंद पाठकों तक पहुँच पाती है, जबकि एक अच्छी फिल्म की पहुँच दुनिया के कोने–कोने तक संभव है। वस्तुतः सिनेमा जब साहित्य के साथ जुड़ता है, तब साहित्य की परिधि बढ़ती है। 20वीं सदी की जिन हिंदी साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन हुआ है उनमें **'गोदान', 'गबन', 'तमस', 'धर्मपुत्र', 'आँधी', 'रजनीगंधा', 'तीसरी कसम', 'सद्‌गति', 'चित्रलेखा', 'उसकी रोटी', 'बाजार–ए–हुस्न', 'सारा आकाश', 'माया–दर्पण', 'तिरिया चरित्तर', 'शतरंज के खिलाड़ी'** और **'पंचवटी'** इत्यादि फिल्में उल्लेखनीय हैं। साहित्य और सिनेमा के संबंधों को प्रकाश में लाने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है किसी कहानी, नाटक या औपन्यासिक कृति का सिनेमाई रूपांतरण। सिनेमा के आरंभिक दौर से अब तक अनेक कृतियों का फिल्मांतरण हो चुका है। रूपान्तरण का अर्थ होता है Form या रूप में अंतर उपस्थित होना। अर्थात् साहित्य का सिनेमा में रूपान्तरण सीधे–सीधे अदृश्य का दृश्य में रूपान्तरण होता है। इसके लिए विधांतर, विधांतरण, रूपांतर, रूपांतरण, प्रकारांतर आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। साहित्य के सिनेमा के क्षेत्र में प्रवेश करने के उपरांत तकनीकी प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है, यही तकनीकी प्रक्रिया **'सिने–रूपांतरण'** या **'फिल्मांतरण'** कहलाती है।

20वीं सदी की फिल्मांतरित हिंदी–साहित्य–कृतियों में अनेक सामाजिक पहलू उद्घाटित हुए हैं जिनमें वर्ग, सम्प्रदाय और जेंडर के प्रश्न गंभीर और संवेदनशील रूप में हमारे सामने आए हैं। राजेन्द्र यादव के उपन्यास पर आधारित और बासु चटर्जी द्वारा निर्देशित फिल्म **'सारा आकाश'** निम्नमध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं तथा विसंगतियों को उजागर करती है। **गोविन्द निहलानी** की फिल्म **'तमस'** ने साम्प्रदायिक उन्माद की विभीषिका को जिस संवेदनशीलता और मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया, उसने दर्शकों की संवेदनाओं को झकझोर कर रख दिया। **बासु भट्टाचार्य** द्वारा निर्देशित फिल्म **'पंचवटी',** 'जेंडर विमर्श' का एक नया आख्यान रचती है। वह न केवल वैवाहिक व्यवस्था पर सवाल उठाती है अपितु परंपरागत नैतिक अनुशासन को मानने से भी इनकार कर देती है। **'रजनीगंधा'** में आधुनिक स्त्री की बदल रही मनोभूमि की स्पष्टतौर पर अभिव्यक्ति हुई है। **'उसकी रोटी'** बालो के माध्यम से उन समस्त परनिर्भर स्त्रियों की कहानी कहती है। जिनका पूरा जीवन मात्र एक प्रतीक्षा बनकर रह गया है। जिनके सामने रोटी, कपड़ा और मकान का सवाल है इसलिए वे अपमानित व उपेक्षित वैवाहिक जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं।

प्रथम अध्याय **'हिंदी सिनेमा का उद्भव एवं विकास'** के अन्तर्गत हिंदी सिनेमा के उद्भव से लेकर उसके वर्तमान स्वरूप तक विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डाला गया है। सिनेमा की शुरुआत फ्रांस में 28 दिसंबर, 1895 ई0 में प्रदर्शित 'ल्युमियर बंधुओं' की फिल्म 'अरायव्हल ऑफ अ ट्रेन' से हुई। भारत में सिनेमा का आगमन 7 जुलाई, 1896 ई0 को संयोगवश ही हुआ। वास्तव में भारतीय सिनेमा का आरंभ सन् 1913 ई0 में दादासाहब फालके द्वारा निर्मित फिल्म **'राजा हरिश्चंद्र'** से माना जाता है। इसे ही प्रथम हिंदी फिल्म माना गया है। हिंदी सिनेमा के इतिहास को आसानी से समझने लिए इसे दो भागों में विभाजित किया गया है– **'मूक सिनेमा'** और **'सवाक् सिनेमा'**।

प्रथम वर्ग के अंतर्गत वे फिल्में होंगी जिनमें ध्वनि, वार्तालाप आदि का अभाव था। दूसरे वर्ग में वे फिल्में आएंगी जिनमें तकनीकी संसाधनों की सहायता से ध्वनि की व्यवस्था की गई थी। ये भारतीय सिनेमा के दो कालखण्ड या दो युग, कहे जा सकते हैं। भारतीय सिनेमा में सवाक् फिल्मों की शुरुआत **आर्देशीर ईरानी** के निर्देशन में बनी फिल्म **'आलमआरा'** से हुई। सन् 1931 ई0 में प्रदर्शित इस फिल्म से सिनेमा का एक नया युग आरंभ हुआ। आरंभ में सिनेमा का झुकाव धार्मिक और पौराणिक विषयों की ओर तत्पश्चात् ऐतिहासिक विषयों की ओर तथा धीरे–धीरे तत्कालीन सामाजिक समस्याओं की ओर हुआ। चालीस के दशक की फिल्में गंभीर सामाजिक मुद्दे को उठा रही थीं। 'नव–यथार्थवाद' का प्रभाव हिंदी सिनेमा पर भी गहरा पड़ा। इस दशक में सिनेमा की विषय–वस्तु, उसकी शैली और प्रस्तुति के ढंग में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा था। पचास–साठ का दशक हिंदी फिल्मों का आदर्शवादी और भारत के नव–निर्माण का युग था। अब सिनेमा रंगीन हो चुका था और तमाम सामाजिक समस्याओं और कुरीतियों पर फिल्में बनाई जा रही थीं। यह हिंदी सिनेमा का स्वर्णिम युग था। पचास–साठ के दशक से चली आ रही समानांतर सिनेमा की धारा ने, सत्तर के दशक तक आते–आते अपना मार्ग अलग कर लिया। हिंदी सिनेमा मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित हो गया– **'समानांतर सिनेमा'** या **'कला सिनेमा'** और **'मुख्यधारा का सिनेमा'** या **'व्यावसायिक सिनेमा'**। नब्बे का दशक भूमंडलीकरण का दौर था। इस दौर में फिल्मकारों का ध्यान उस विशिष्ट वर्ग तक सीमित रहा जहाँ उन्हें मोटी कमाई होने की पूरी गारंटी दिखाई दे रही थी। ऐसे में फिल्मकारों का एक ऐसा वर्ग भी उभरकर आया जिसकी प्राथमिकता में प्रवासी भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय दर्शक रहे।

21वीं सदी में हिंदी सिनेमा के परिदृश्य में काफी बदलाव आया है। उसने बदलते दौर के अनुरूप सभी स्तरों पर खुद को बदला–विषय, कथानक,

भाषा–शैली, पात्र व चरित्र, तकनीक, गीत–संगीत, नए मूल्यबोध, सिनेमाई सौंदर्यशास्त्र, उद्देश्य और दर्शकों की पसंद के हिसाब से खुद को ढाला है।

20वीं सदी की हिंदी कहानियों पर आधारित फिल्में हैं– **हीरा–मोती, उसने कहा था, तीसरी कसम, उसकी रोटी, माया दर्पण, रजनीगंधा, मौसम, सांच को आँच नहीं, सतह से उठता आदमी, सद्‌गति, शतरंज के खिलाड़ी, तिरिया चरित्तर, जीना यहाँ**। इसी प्रकार हिंदी उपन्यासों पर आधारित फिल्मों के नाम हैं– **चित्रलेखा, रंगभूमि, गोदान, बाजार–ए–हुस्न, तमस, धर्मपुत्र, गबन, सारा आकाश, बदनाम बस्ती, 27 डाउन, डाक बंगला, आंधी, त्यागपत्र, नदिया के पार, पंचवटी, सूरज का सातवाँ घोड़ा, नौकर की कमीज, समय की धारा**।

द्वितीय अध्याय **'साहित्य और सिनेमा का अंतःसंबंध'** के अंतर्गत साहित्य के अर्थ एवं स्वरूप पर तथा सिनेमा के अर्थ एवं स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए साहित्य और सिनेमा के आपसी संबंधो की पड़ताल उनके बीच पायी जाने वाली समानता एवं असमानता को लेकर की गई है।

'साहित्य' शब्द सहित में 'यत्' प्रत्यय के योग से बना है– साहित्य = सहित+यत् प्रत्यय। 'सहित' के दो अर्थ हैं–'साथ–साथ' और 'हित–युक्त'। प्रथम अर्थ के अनुसार, शब्द और अर्थ का सहित होना अर्थात् साथ–साथ होना ही साहित्य है। दूसरे अर्थ के अनुसार, जो समाज के हित या लोकमंगल के लिए हो वह साहित्य है। 'साहित्य' शब्द का प्रयोग सातवीं–आठवीं सदी से मिलता है। यह संस्कृत साहित्य में **'काव्य'** के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वर्तमान में 'काव्य' का अर्थ केवल कविता तक सीमित रह गया है और **'साहित्य'** शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है। 'साहित्य' का तात्पर्य अब गद्य और पद्य की सभी विधाओं से है।

सिनेमा के लिए आज अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं। सिनेमा के आरंभिक दौर में 'चलचित्र' अथवा 'मोशन पिक्चर' शब्द प्रयुक्त होते थे। जैसे–जैसे सिनेमा का विकास होता गया, वैसे–वैसे उसके परिवर्तित रूप के आधार पर सिनेमा के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। सिनेमा के लिए चलचित्र, मोशन पिक्चर, मूवी, फिल्म आदि कई शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें 'सिनेमा' शब्द चलचित्र के व्यापक अर्थ को स्पष्ट करने में सक्षम है। यही कारण है कि आज चलचित्र के विकसित रूप के लिए 'सिनेमा' शब्द का प्रयोग तर्कसंगत लगता है। सिनेमा का स्वरूप निरंतर गतिशील एवं परिवर्तनशील रहा है। सिनेमा के आरंभिक दौर में हिलते–डुलते चित्र समाज लिए आश्चर्य के विषय थे। धीरे–धीरे सिने–कैमरा तथा अन्य तकनीकी साधनों का विकास, छायांकन–संपादन की नूतन शैलियों का प्रयोग, ध्वनि, लाइट्स, 3–डी एनीमेशन, फोटोरियलिस्टिक मोशन तकनीक आदि बातें सिनेमा के परिवर्तनशील तथा व्यापक रूप पर प्रकाश डालती हैं। साहित्य और सिनेमा न केवल मनोरंजन के साधन हैं अपितु ये हमारी सोच, हमारी मानसिकता को प्रभावित कर हमारे विचारों में परिवर्तन लाने का सार्थक प्रयास भी करते हैं। दोनों की अभिन्नता का प्रमाण है–समाज। यह समाज दोनों की आधारभूमि है। राजनीतिक व्यवस्था की विद्रूपताओं को भी साहित्य और सिनेमा ने उजागर किया है। 'तमस', 'आंधी' जैसी फिल्में कुत्सित राजनीति का पोल खोलती हैं।

साहित्य की भाँति सिनेमा ने न केवल भारतीय संस्कृति की रक्षा करने के साथ ही उसे विदेशों तक पहुँचाया है बल्कि अन्य देशों की सभ्यता एवं संस्कृति से भी हमारा परिचय कराया है। साहित्य और सिनेमा अपने उद्देश्य को लेकर भले ही एक जैसे रहे हों, किन्तु कई बार आपसी तालमेल बैठाने में समस्याओं का सामना करना पड़ा है, क्योंकि उनमें कई सारी भिन्नताएँ मौजूद हैं। साहित्य व्यक्तिगत सृजन का परिणाम है जबकि सिनेमा में एक पूरी टीम काम करती है। दोनों में विधागत अंतर भी देखने को मिलता है। साहित्य जहाँ लिखित विधा है

तो सिनेमा प्रदर्शनीय। श्रव्य–दृश्य होने के कारण सिनेमा अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली माध्यम बनकर उभरा है। साहित्य की कथा से भिन्न सिनेमा की अपनी पटकथा होती है। जिसका अपना एक अलग ढाँचा होता है, यह कैमरे की भाषा में लिखी जाती है। साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र सिनेमा के सौन्दर्यशास्त्र से भिन्न है। सिनेमा के निर्माण में बाजार की भूमिका अहम होती है। साहित्य–सृजन जहां एक सरल माध्यम है वहीं सिनेमा अत्यंत महंगा। सिने उद्योग में पूंजी का बहुत ही महत्व होता है। फिल्मकारों के लिए सिनेमा एक व्यवसाय है। साहित्य और सिनेमा की पृथकता इस बात में है कि किसी साहित्यिक कृति का आस्वाद एक समम में एक ही व्यक्ति ले सकता जबकि सिनेमा का आनंद एक साथ सैकड़ो लोग उठा सकते हैं। अंततः यह कहा ता सकता है के साहित्य और सिनेमा दो भिन्न कला माध्यम हैं जो कुछ बिंदुओं पर एक दिखायी देते हैं।

तृतीय अध्याय **'साहित्यिक कृतियों एवं उन पर आधारित फिल्मों का तुलनात्मक अध्ययन'** के अंतर्गत मूल साहित्यिक रचनाओं एवं उन पर बनी फिल्मों की तुलना और समीक्षा मुख्यतया दो स्तरों पर की गयी है–

1. **वस्तुगत आधार पर**
2. **भाषागत आधार पर**

वस्तुगत आधार पर तुलनात्मक समीक्षा के अंतर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर तुलना की गयी है–

1. कथा
2. पात्र व चरित्र
3. संवाद
4. देशकाल एवं वातावरण

5. उद्देश्य

इस तुलना में फिल्मांतरण में हुए परिवर्तनों का विवेचन किया गया है। किसी भी साहित्यिक रचना को यथावत् फिल्मांतरित करना बहुत ही जटिल और संश्लिष्ट है क्योंकि सिनेमा श्रव्य–दृश्य माध्यम है; अतः फिल्मकार साहित्यकार के शब्दबद्ध विचारों, भावों और संवेदनाओं को दृश्यानांतरित कर उन्हें चित्रों तथा ध्वनि बिम्बों में परिवर्तित करता है। इस परिवर्तन में वह मूल रचना की कथा, पात्रों एवं चरित्र, संवाद, देशकाल–वातावरण और उद्देश्य को कम या अधिक मात्रा में ग्रहण करता है। इसके साथ ही साथ वह नये पात्रों, दृश्यों, घटनाओं, संवादों का सृजन भी करता है। अतः फिल्मकार के सामने चयन की समस्या एक प्रमुख समस्या बनकर खड़ी हो जाती है।

भाषागत आधार पर तुलनात्मक समीक्षा के अंतर्गत भाषागत होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा एक सशक्त माध्यम है। भाषा के विविध रूप हो सकते हैं जैसे–सांकेतिक, शाब्दिक, मौन, आंगिक आदि। भाषा का उद्देश्य होता है भावों व विचारों का संप्रेषण। किंतु सिनेमा की भाषा किसी भी साहित्यिक कृति की भाषा से भिन्न होती है। वह मात्र शब्दों की भाषा न होकर कैमरे, प्रकाश, ध्वनि, अभिनय आदि के मेल से बनती है। साहित्यिक भाषा शब्दों पर आधारित होती है जबकि सिनेमाई भाषा दृश्यों पर आधारित होती है। फिल्म निर्देशक को सिनेमाई भाषा का ज्ञान होना भी आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होगा तो फिल्मांतरित साहित्यिक कृति का सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा।

प्रस्तुत अध्याय में 20वीं सदी की शोध–विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं प्रतिनिधिक रचनाओं पर आधारित–**'तीसरी कसम', 'सूरज का सातवाँ' घोड़ा', 'तमस', 'सारा आकाश', 'माया दर्पण'** और **'समय की धारा'** इत्यादि फिल्मों और

मूल रचनाओं की वस्तुगत और भाषागत तत्वों के आधार पर तुलना व समीक्षा की गई है।

चतुर्थ अध्याय **'फिल्मांतरित साहित्यिक कृतियों में अभिव्यक्त वर्ग, सम्प्रदाय और जेंडर'** के अंतर्गत न केवल वर्ग, संप्रदाय, और जेंडर से संबंधित सवालों की पहचान की गई है अपितु उनका गहराई से विवेचन–विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। भारतीय समाज जाति, धर्म, वर्ग, लिंग अथवा पितृसत्ता के आधार पर बँटा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समूह, वर्ग, लिंग, जाति, जनजाति और संप्रदाय से जुड़ा होता है। हमारे भारतीय समाज में आज भी वर्ग, सम्प्रदाय, जाति और जेंडर से संबंधित विसंगतियाँ देखने को मिलती हैं। जाति, धर्म व लिंग के आधार पर विविध प्रकार का किया जाने वाला भेदभाव वर्तमान भारत का क्रूर यथार्थ है। जिसकी झलक आए दिन होने वाली घटनाओं में देखने को मिलती रहती है। वर्ग, संप्रदाय और जेंडर को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले भारतीय सामाजिक मनोविज्ञान को समझने का प्रयास किया जाए। समाज में निहित जाति, धर्म, वर्ग, संप्रदाय आदि संदर्भों की गहराई से पड़ताल की जाए।

20वीं सदी की जिन फिल्मों में वर्ग, जाति, सम्प्रदाय और जेंडर के आधार पर शोषित, बहिष्कृत, उपेक्षित, पीड़ित, आर्थिक रूप से अक्षम, राजनैतिक रूप से शक्ति सम्पन्न, दलित, सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित–अप्रतिष्ठित और हाशिए के जिस समाज का चित्रण गहरी संवेदना व कलात्मकता के साथ मिलता है उनमें **श्याम बेनेगल** द्वारा निदर्शित **'सूरज का सातवाँ घोड़ा'**, **सत्यजित रॉय** की **'सद्गति'**, **ऋषिकेश मुखर्जी** की **'गबन'**, **बासु चटर्जी** की **'सारा आकाश'**, **मणिकौल** की **'नौकर की कमीज'** **गुलजार** की **'आंधी'**, **त्रिलोक जेटली** की **'गोदान'**, **मोहन दयाराम भवनानी** की **'रंगभूमि'** , **बासु भट्टाचार्य** की **'तीसरी कसम'**, **मणिकौल** की **'उसकी रोटी'**, **कुमार शाहनी** की **'माया दर्पण'**, **मणिकौल**

की **'सतह से उठता आदमी' सत्यजित रॉय** की **'शतरंज के खिलाड़ी', गोविंद निहलानी** की **'तमस' यश चोपड़ा** की **'धर्मपुत्र'** इत्यादि फिल्में उल्लेखनीय हैं।

'गबन' की कथा निम्नमध्यवर्गीय मिथ्या–प्रदर्शन, मिथ्याभिमान व आभूषण प्रेम के दुष्परिणाम के इर्द–गिर्द घूमती है, जिसमें समस्याएँ हैं– अनमेल विवाह की, रिश्वत की, विधवा–जीवन की, वेश्या–जीवन की, स्त्री–स्वाधीनता की, पुलिस के वंचनापूर्ण हथकण्डों आदि की। 'रंगभूमि' में प्रेमचंद तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याओं पर दृष्टिपात करते हुए विविध वर्गों, जातियों और सम्प्रदायों के आपसी मतभेदों व विभिन्न पक्षों का यथार्थपरक उद्‌घाटन करते हैं। **'सूरज का सातवाँ घोड़ा'** में निष्कर्षवादी प्रेम–कहानियों के माध्यम से निम्नमध्यवर्गीय स्वप्नों, विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, समस्याओं, विरोधाभास, नैतिक विश्रृंखलता, हताशा–निराशा, कटुता, कुंठा, मोहभंग, सामाजिक–पारिवारिक समझौतापरस्ती व टूटती सामाजिक–पारिवारिक मर्यादाओं की अभिव्यक्ति रोचक, व्यंग्यपूर्ण और अनूठी किस्सागोई शैली में हुई है। **'सारा आकाश'** में निम्न–मध्यवर्ग का बड़ा ही यथार्थपरक चित्रण हुआ है, जिसमें इस वर्ग की तमाम विसंगतियाँ प्रकाश में आती हैं। **'सद्‌गति'** छुआछूत के नाम पर दलितों पर किए जाने वाले अत्याचार, शोषण और थोथे पाखंड की नग्न सच्चाई को बयान करती है। **'माया दर्पण'** सामंत वर्ग के झूठे सामंती आदर्शों, अतीत के प्रति मोह और सामंती पितृसत्तात्मक मानसिकता की निरर्थकता को उद्‌घाटित करती है। वर्ण–जाति व्यवस्था व्यक्ति के सामाजिक, वैयक्तिक, जातीय व वर्गीय संबंधों को प्रभावित और संचालित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। **'गोदान'** में वर्ग–विषमता का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण हुआ है। जिसके अंतर्गत किसानों, जमींदारों, महाजनों, उच्च जातियों, पिछड़ी जातियों और दलित जातियों की समस्याओं का बड़ा ही यथार्थपरक अंकन हुआ है। **'तमस'** फिल्म का मुख्य पात्र निम्नवर्गीय 'नत्थू' चमार है जो उच्चवर्गीय पात्रों के हाथों की कठपुतली है। निम्नमध्यवर्गीय हरनामसिंह और उसकी पत्नी बंतो साम्प्रदायिक नफरत के शिकार

होते हैं। उन्हें अपने घर से बेघर होना पड़ता है और देखते ही देखते उनकी आखों के सामने ही उनका घर बलवाईयों द्वारा लूट लिया जाता है। 'तमस' साम्प्रदायिक दंगों के दौरान सबसे अधिक प्रभावित होने वाले स्त्री वर्ग को भी रेखांकित करता है। इसके साथ ही इसका भी पर्दाफाश करता है कि इन साम्प्रदायिक दंगों के दौरान सर्वाधिक हिंसा, नफरत और घृणा का शिकार कौन–सा वर्ग होता है। 'जेंडर' से तात्पर्य किसी लिंग (स्त्री या पुरुष) से जुड़ी सामाजिक अथवा सांस्कृतिक विशिष्टताओं से होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया के जरिए निर्धारित की गईं ये विशिष्टताएँ स्त्रियों, पुरुषों और एलजीबीटी कम्युनिटी के लिए उनकी भूमिका, व्यवहार, अवसर और क्रियाकलाप निश्चित करती हैं। प्रत्येक संस्कृति में जेंडर के गुणों से संबंधित मानक अलग–अलग होते हैं। वे किसी समय या संदर्भ विशेष में विशिष्ट होते हुए भी परिवर्तनीय होते हैं। जेंडर वर्ग, जाति और सम्प्रदाय से अंतर्संबंधित होता है।

जेंडर का विश्लेषण करने के लिए 20वीं सदी की जिन फिल्मांतरित साहित्यिक कृतियों का चयन किया गया है उनमें **'माया दर्पण', 'सद्गति', 'गोदान' 'उसकी रोटी', 'तिरिया चरित्तर', 'आपका बंटी' (समय ही धारा), 'रंगभूमि',** इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। **'माया दर्पण'** पितृसत्तात्मक सामंतवाद के झूठे दंभ में फँसकर अकेलेपन की पीड़ा भोगती युवती 'तरन' की कहानी है। यह कहानी सामंती समाज की उस जकड़न को अभिव्यक्त करती है जिसमें स्त्रियों को अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति लिए अधिक जगह नहीं है। **'सद्गति'** में सहृदयता को लेकर एक बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है। परंपरागत रूप से यह माना जाता रहा है कि स्त्रियाँ भावनात्मक रूप से पुरूषों की तुलना में अधिक सहृदय होती हैं। किन्तु सद्गति बिना किसी पूर्वाग्रह, भेदभाव और लाग–लपेट के स्पष्टतौर पर यह घोषणा करती है कि सहृदय होना स्त्री अथवा पुरुष का विशेषाधिकार नहीं है। दोनों ही सहृदय हो सकते और दोनों ही कुहृदय हो सकते हैं। सहृदयता और संवेदना का जेंडर (लिंग–भेद) से कोई संबंध नहीं

है। अभिजात्य स्त्री पात्र पंडिताईन का चरित्र इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। **'गोदान'** में प्रेमचंद भारतीय समाज में स्त्रियों की भूमिका पर पुनर्विचार करते हैं। इसमें वे ग्रामीण समाज में उत्पीड़क वर्गों या उच्च जातियों द्वारा दलित वर्ग या निचली जाति की स्त्रियों के यौन–शोषण पर भी सवाल उठाते हैं। सिलिया जातिगत शोषण की शिकार है किंतु वह विद्रोह नहीं करती, बल्कि परिस्थिति से समझौता करते हुए आत्मसमर्पण कर देती है। ब्राह्मण मातादीन की रखैल बनकर उसके साथ रहने में उसे जरा–सा भी अपमान–बोध नहीं होता। जबकि मातादीन को उससे प्रेम नहीं है वह उसे भोगदासी और मुफ्त की मजदूरनी से अधिक नहीं समझता। रात–दिन उसका काम करती सिलिया को उसकी संपत्ति में दो मुट्ठी अनाज लेने का भी अधिकार नहीं है। सिलिया से बेगार ले रहे मातादीन के पिता दातादीन का कहना है कि जितना उबार उनका सिलिया से होता है उतना किसी ब्राह्मण कन्या से नहीं होता। धनिया गोदान की सर्वाधिक मुखर चरित्र है। अपनी सम्पूर्णता में वह होरी का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करती हुई एक विद्रोहिणी स्त्री है। वह प्रगतिशील चेतना से युक्त नारी है, उसे बिरादरी की परवाह नहीं है और न ही वह बिरादरी से डरती है। झुनिया न सिर्फ गोबर से प्रेम करती है बल्कि उस प्रेम–संबंध को निभाने की खातिर समाज से लड़ती भी है। वह अकेले ही समाज के विरोध और तिरस्कार का सामना करती है। स्त्रियों से ही प्रेम में समर्पण की अपेक्षा रखने वाले पितृसत्तात्मक समाज से भी वह समर्पण की मांग करती है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों से ही सती–सावित्री होने की उम्मीद की जाती है, इसके लिए उन्हें उपदेश दिया जाता है। झुनिया उस सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देती है। **'उसकी रोटी'** नारी अस्मिता से जुड़े गंभीर सवालों की पड़ताल कर भारतीय समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति, उसकी समस्याओं, अधिकारों, भूमिका और परिवार तथा समाज में उसके स्थान पर एक गहरी व गंभीर दृष्टि डालती है। बस ड्राईवर सुच्चा सिंह महीने में कभी–कभार ही घर आता है। उसकी पत्नी बालो को यह भी मालूम है कि उसने नकोदर में रखैल रखी है, जहाँ अपनी आमदनी का ज्यादातर हिस्सा वह खर्च

करता है फिर भी बालो उसके लिए रोज रोटियां बनाकर बस स्टैंड पहुँच घण्टों उसका इंतजार करती है। जो रोटियाँ सुच्चा सिंह के लिए हैं अप्रत्यक्ष रूप से उन्हीं रोटियों का गंभीर सवाल बालो के समक्ष उपस्थित है इसलिए सबकुछ जानते हुए भी वह इस खोखले संबंध को बड़ी शिद्दत से निभाती है।

'तिरिया चरित्तर' वर्षों से चली आ रही कहावत **'तिरिया चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम...'** के आधार पर स्त्रियों के चरित्र का निर्धारण करने वाले पुरूष–समाज की दकियानूसी सोच को शिवमूर्ति ने इस कहानी के माध्यम से बेपर्दा किया है। अपने ससुर द्वारा किए गए बलात्कार को गाँव की अन्य स्त्रियों की भांति वह अपनी नियति मानकर स्वीकार नहीं करती बल्कि उसके खिलाफ आवाज उठाती है और भरी पंचायत में विद्रोह करती हुई पंचों का फैसला मानने से इनकार कर देती है। निर्णय करने वाली पंचायत भी उन बदचलन और लम्पट पुरुषों की है जो स्त्रियों को भोगने के लिए जब बल, से नहीं जीत पाते तो छल का सहारा लेते हैं तथा धार्मिक पाखण्ड की आड़ में अपनी कुत्सित वृत्तियों को आसानी से छुपा लेते हैं। विमली का ससुर विसराम यही हथकण्डा अपनाता है। औरतें इनके खिलाफ जाने या आवाज उठाने की हिमाकत नहीं कर सकतीं क्योंकि या तो उनकी आवाज सुनी नहीं जाएगी या दबा दी जायेगी अथवा उनपर कोई विश्वास नही करेगा और उन्हें ही अपराधियों के कटघरे में खड़ा कर दिया जाएगा। निर्दोष विमली अपराधियों के कटघरे में खड़ी कर दी जाती है। पंचायत निर्णय करती है कि गाँव की इज्जत को दाग लगाने वाली जनानी को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता। मनतोरिया की माई के यह कहने पर कि फिर महाभारत दोहराई जा रही है। भरी सभा में लाचार औरत की बेइज्जती हो रही है। इस पर उसके पति का कहना है कि वह कोई रानी महारानी थोड़ी ही है जो उसके लिए महाभारत होगा। इस कथन से यह पता चलता है कि वर्ग, जाति और जेण्डर की कड़ियाँ किस तरह से आपस में जुड़ी हुई हैं। वर्ग, जाति और जेंडर एक–दूसरे को प्रभावित करने के साथ ही प्रभावित भी होते हैं। एक दलित जाति की और

आर्थिक रूप से विपन्न औरत के लिए न तो कभी महाभारत हुआ है और न ही होगा।

'आपका बंटी' (समय की धारा) एक शिक्षित, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, आर्थिक रूप से समृद्ध और सामाजिक रूप से प्रभावशाली स्त्री शकुन (माधवी) की कहानी है जो अपने अस्तित्व को से लेकर सचेत है। शिक्षित और स्वतंत्र शकुन परंपरावादी माँ नहीं है जो बच्चे की जिन्दगी सँवारने के लिए खुद को मिटाकर त्याग की देवी बनना पसंद करती है। वह एक आधुनिक विचारों वाली स्त्री है जिसका अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है, अपनी कुछ इच्छाएँ हैं। वह अपने अस्तित्व के प्रति सचेत और जागरुक है। अपने अस्तित्व को समाप्त करना उसने कभी स्वीकार नहीं किया न तो अजय के लिए और न ही बंटी के लिए। **'रंगभूमि'** स्त्रियों के जेंडरीकरण में पितृसत्तात्मक सोच रखने वाली स्त्रियों के चरित्र को उद्‌घाटित करने के साथ ही गरीब, मजदूर और निम्न वर्ग की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को भी उजागर करता है। जेण्डर के अंतर्गत यदि हम बात करें थर्ड जेंडर की तो हिंदी साहित्यिक कृतियों के अंतर्गत इनका जहाँ कहीं भी थोड़ा–बहुत जिक्र हुआ है वह गरिमामय नहीं कहा जा सकता। उनकी अस्मिता का प्रश्न हो अथवा अस्तित्व से जुड़े अन्य प्रश्न उन्हें रेखांकित नहीं किया गया है। इस उपेक्षित समुदाय के अनछुए पहलुओं को उद्‌घाटित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। **'आँधी'** में चुनाव जीतने के अवसर पर उनकी दस्तक हुई है जहाँ वे मात्र–नाचने गाने वालों के रूप में उपस्थित हैं। इसी प्रकार 'सारा आकाश' में भी ये नाचने–गाने वालों के रूपमें ही मौजूद हैं।

सम्प्रदाय के अंतर्गत साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा की समस्या पर विचार करना और उसका विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। **'तमस'** साम्प्रदायिक दंगों के दौरान कई मार्मिक और अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालता है; इसके साथ ही यथार्थ दृष्टि अपनाते हुए साम्प्रदायिक समस्याओं का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के

कारण लाखों लोग साम्प्रदायिक दंगो के दौरान मारे गये और बेघर हुए। इन दंगो के दौरान स्त्रियाँ सर्वाधिक बर्बरता की शिकार हुईं। अपनी इज्जत की रक्षा के लिए और अपने साथ होने वाली दरिंदगी से आतंकित हो मासूम बच्चों संग कुएं में छलांग लगाती महिलाएं, धर्मान्धता की पराकाष्ठा, लूटपाट और बलात्कार जैसे अमानवीय कृत्य मनुष्य की संवेदना को झकझोर कर रख देते हैं। **'रंगभूमि** में प्रेमचंद्र धार्मिक संकीर्णता, पूर्वाग्रह, उन्माद, कट्टरता, कर्मकांड और पाखंड का विभेदन करते हुए यह स्पष्ट घोषणा करते हैं कि धर्म केवल स्वार्थ–संगठन है। और अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जो धर्म हमारे लिए कल्याणकारी नहीं है उससे जितना जल्दी हो सके छुटकारा पा लेना चाहिए। **'धर्मपुत्र'** धर्म और संस्कृति के विकृत और घृणित रूप का विवेचन करते हुए यह समझाने का भी प्रयास करती है कि आखिर वास्तविक धर्म व संस्कृति क्या है।

पंचम अध्याय **'फिल्मांतरित साहित्यिक कृतियों का महत्व'** के अंतर्गत कालजयी फिल्में और उनकी प्रासंगिकता की चर्चा की गई है। इसके अंतर्गत **'पिंजर', 'तमस', 'रंगभूमि', 'गोदान'** और **'समय की धारा'** इत्यादि फिल्मों का विवेचन–विश्लेषण करने प्रयास किया गया है। वर्तमान दौर में जब संकीर्ण सोच को बढ़ावा दिया जा रहा है, अफवाहें फैलायी जा रही हैं, धार्मिक कट्टरता बढ़ी है और मानवीय साझापन को धक्का लगा है, ऐसे प्रदूषित माहौल में 'तमस' जैसी फिल्मों का महत्व और भी बढ़ जाता है। यह धर्म के नाम पर दंगे–फसाद करने वालों को बेनकाब करती हुई एक स्पष्ट, ईमानदार और सौहार्द्रपूर्ण उत्तर प्रस्तुत करती है कि दंगाईयों की बलवाईयों की न तो कोई जात होती है और ना ही धर्म। अमृता प्रीतम के उपन्यास पर आधारित फिल्म **'पिंजर'** विभाजन की पीड़ा को बयान करते हुए जिस तरह से स्त्री–सवालों को उठाती है, वह उसकी निजी विशेषता है।

किसानों में आपसी एकता का अभाव, न्यायालयों का अत्याचार, पुलिस का अत्याचार, पूँजीपतियों की चालबाजियाँ, उद्योगपतियों की स्वार्थलोलुपता, और

विधानसभाओं की अकर्मण्यता का यथार्थ **'रंगभूमि'** में उभरा है। प्रेमचंद्र **'गोदान'** में हर वर्ग से जुड़ी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक समस्याओं का उद्‌घाटन करते हैं।